ज्ञान का स्वामित्व और नाटक प्रक्रिया

मौअज़्ज़म अली

चित्रः निधिन डोनाल्ड

‘ज्ञान का स्वामित्व’ जिसके अन्तर्गत ये माना जाता है कि एक बच्चा अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं करता है, की रोशनी में, नाटक की प्रक्रिया में इसको हासिल करने के कुछ अनुभव और उनपर चर्चा।

ज्ञान का स्वामित्व’ के क्या मायने हैं? इस प्रश्न को शिक्षा में कार्य करने वालों तथा शिक्षकों से पूछे जाने पर यह बात निकलकर आती है कि “अनुभवात्मक प्रक्रिया में जाकर जब किसी बच्चे या बच्चों के समूह द्वारा स्वयं अपने ज्ञान का निर्माण किया जाता है, और उन्हें स्वयं भी यह मालूम होता है कि उन्होंने इस ज्ञान को अपने अनुभव और समझ से प्राप्त या निर्मित किया है, यह हमारा स्वयं का निर्मित ज्ञान है और हम अपने शब्दों में इसे व्यक्त या उसकी व्याख्या कर सकते हैं तो उसे ‘ज्ञान

का स्वामित्व' कहा जा सकता है।"

यह ज़रूरी नहीं कि इससे पहले किसी को वह ज्ञान नहीं था बल्कि यह ज्ञान पहले से भी विद्यमान हो सकता है, बस इस बार इसे स्वयं हासिल किया गया है। इसको एक उदाहरण से इस प्रकार समझा जा सकता है कि हमने किसी स्थान या इमारत या वस्तु के बारे में बहुत सुना है। इसे चित्रों में भी देखा है, इसके बारे में पढ़ा भी है तो हम इसके बारे में बहुत-सी जानकारी रखते हैं। अगर कोई इसके बारे में कुछ पूछता है तो हम वही बात बताते हैं जो हमने पढ़ी या सुनी है। हाँ, ये बात और है कि इन जानकारियों को हम अपने शब्दों में भी बयान कर सकते हैं लेकिन उस जगह पर जाने, अपनी आँखों से देखने या अपने हाथों से छूने के एहसास को हम बयान नहीं कर सकते।

किसी जगह पर जाकर, किसी इमारत को अपनी आँखों से देखकर, या किसी वस्तु को अपने हाथों से छूकर, चखकर या सूंघकर जो अनुभवात्मक अनुभूति होती है, उसे केवल जानकारियों से नहीं समझा जा सकता है। हाँ, हम अपने पूर्वज्ञान के आधार पर कुछ अन्दाज़ ज़रूर लगा सकते हैं। तथ्यात्मक जानकारियों को तो पूर्ण विश्वास के साथ साझा किया जा सकता है परन्तु अनुभवात्मक अनुभूति या एहसास को इसकी गैरहाज़री में बहुत विश्वास के साथ वर्णित नहीं किया जा सकता। मगर इसका मतलब यह बिलकुल नहीं है कि हर ज्ञान अनुभव के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। हाँ, अनुभव उसको एहसास से लिपटे अपने शब्द ज़रूर मुहैय्या कराता है।

वैसे तो रचनावाद की प्रक्रिया अपनाते हुए किसी भी शिक्षण विधि द्वारा कक्षा में इस बात को स्थापित करना कठिन है कि बच्चों ने अपने ज्ञान का निर्माण स्वयं किया है और वे इस पर अपना स्वामित्व भी रखते हैं, लेकिन यहाँ अपने शिक्षण अनुभव के आधार पर हम नाटक की प्रक्रिया में इसकी सम्भावना की छानबीन करेंगे।

शिक्षा में नाट्यकला के क्षेत्र में कार्य करने वाले अभ्यासकारों और विद्वानों जैसे गैबिन बोल्टन और डोरोथी हीथकोट ने शिक्षा में नाट्यकला को दो भागों में विभाजित किया है – प्रस्तुति नाटक और प्रक्रिया नाटक। प्रस्तुति नाटक में कक्षा में बच्चों के साथ नाटक को दर्शकों के समक्ष कला के तौर पर प्रदर्शन के उद्देश्य से तैयार किया जाता है, और प्रक्रिया नाटक में कक्षा में बच्चों के साथ नाटक से जुड़ी सभी प्रक्रियाएँ शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए सीखने के आशय से की जाती हैं जिसमें प्रदर्शन के लिए कोई स्थान नहीं होता।

इस आधार पर 'ज्ञान के स्वामित्व'

में नाटक प्रक्रिया की भूमिका को सोचा जाए तो प्रस्तुति नाटक की बजाए प्रक्रिया नाटक की कक्षा के ऐसे कई उदाहरण दिमाग में गूंजते हैं, जिसके आधार पर विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि प्रतिभागी या प्रतिभागियों ने 'ज्ञान का स्वामित्व' हासिल किया। लेकिन इससे पहले प्रक्रिया परक नाटक की अवधारणात्मक समझ बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रक्रिया नाटक की अवधारणा

प्रक्रिया नाटक एक ऐसी गतिशील एवं सशक्त कार्यप्रणाली है जिसमें शिक्षक और विद्यार्थी एक साथ मिलकर काम करते हुए एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करते हैं तथा इस काल्पनिक दुनिया के रहते हुए किसी समस्या, परिस्थिति, विषय, घटना या घटनाओं की श्रृंखला आदि की जाँच-पड़ताल और विश्लेषण करते हैं। यह प्रक्रिया दर्शकों के लिए प्रदर्शन को ध्यान में रखकर नहीं

बल्कि खुद की समझ को विकसित करने एवं विचारों या ज्ञान का निर्माण करने के लिए की जाती है।

इस नाटक प्रक्रिया में विद्यार्थी अपने अनुभव के आधार पर जीवन से जुड़ी बहुत-सी भूमिकाएँ निभाते हैं तथा इस भूमिका निभाने की प्रक्रिया में किसी और के जीवन को जीते हुए उस पर सोचने, समझने व अन्दाज़ा लगाने की कोशिश करते हैं। साथ ही, अन्य बहुत-सी चिन्तनशील गतिविधियों में संलग्न होते हुए पहले से स्थापित खुद के दृष्टिकोण से परे सोचने एवं एक ही मुद्दे पर विभिन्न परिप्रेक्ष्य बनाने का प्रयास करते हैं।

प्रक्रिया नाटक के अन्तर्गत यह प्रयास किया जाता है कि प्रतिभागी वास्तविक दुनिया से हासिल समझ, विचार, अनुभव, परिस्थिति को लेकर एक काल्पनिक दुनिया का निर्माण करे और इस प्रक्रिया में इनकी पुन: रचना करते हुए एक अनुभवात्मक समझ या ज्ञान का निर्माण करे और उस ज्ञान पर स्वामित्व हासिल करे।

'ज्ञान के स्वामित्व' को समझने के लिए पहले, 'ज्ञान क्या है?' को समझना होगा। इस विषय पर बहुत-से दार्शनिकों और अभ्यासकर्ताओं ने ज्ञान को मुख्य रूप से दो हिस्सों में बाँटकर समझने की कोशिश की है, 'सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहारिक ज्ञान।' इसी सन्दर्भ में लेमोस नोह की किताब *एन इंट्रोडक्शन टू थियरी ऑफ नॉलेज* की व्याख्याओं को समझते हैं जिसमें लेखक ने ज्ञान को तीन हिस्सों में बाँटा है।

1. **सैद्धान्तिक ज्ञान** - इसका उदाहरण देते हुए लेखक समझाता है कि इस तरह का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को किसी व्यक्ति/वस्तु/जगह की भरपूर जानकारी होती है मगर वो उस व्यक्ति से मिला नहीं होता, या उस वस्तु को देखा या छुआ नहीं होता, या उस जगह पर गया नहीं होता।
2. **व्यवहारिक या अनुभवात्मक ज्ञान** – इसकी बात करते हुए लेखक समझाता है कि ये जानकारियों पर नहीं बल्कि पहचान या अनुभव पर आधारित होता है। इस तरह का ज्ञान रखने वाले व्यक्ति को शायद किसी व्यक्ति/वस्तु/जगह की भरपूर जानकारी न हो मगर वह उस व्यक्ति को पहचानता है, उससे मिला हुआ है या उस वस्तु को देखा/छुआ है या उस जगह पर गया हुआ है।
3. **'कैसे' ज्ञान** – इस तरह के ज्ञान की बात करते हुए लेखक कहता है कि हो सकता है किसी व्यक्ति को यह तो मालूम हो कि गिटार कैसे पकड़ा/बजाया जाता है, उसके कौन-से तार से कौन-सी ध्वनि निकलती है आदि मगर वो व्यक्ति स्वयं उसको बजाने में असमर्थ होता है। इसी तरह एक व्यक्ति, साइकिल कैसे चलाई जाती है, के बारे में तो विस्तारपूर्वक

व्याख्या कर सकता है परन्तु वह स्वयं साइकिल चला नहीं सकता।

इसके साथ ही जॉन रे नामक एक दार्शनिक की पंक्तियों को भी लिया जा सकता है जिसमें उन्होंने 'ज्ञान के स्वामित्व' को 'बोध' (knowing) कहकर पुकारा है तथा 'ज्ञान' और 'ज्ञान के स्वामित्व' को कुछ इस तरह से समझाया है:

1. ज्ञान - ज्ञान संगठित सूचना से ज़्यादा कुछ नहीं है। यह एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो जानकारी प्राप्त करने से आती है।
2. बोध - बोध एक भावनात्मक प्रक्रिया है। यह स्वामित्व से आता है। हम लगातार ज्ञान से बोध की ओर बढ़ते हैं - शिक्षा से स्वामित्व तक। स्वामित्व मुख्यत: तीन तरह से आता है: अध्ययन, प्रयोग और पुनरावृत्ति।

जॉन रे के ऊपर दिए गए विचारों को पढ़कर 'ज्ञान के स्वामित्व' के स्थान पर 'बोध' या 'जानना' ज़्यादा आसान और समझ में आने वाला शब्द लगता है और इस शब्द को पकड़कर आगे की बात की जा सकती है।

'ज्ञान का स्वामित्व' पर कोई किताब या कोई सटीक लेख या शोध कार्य बमुश्किल ही मिलता है, परन्तु *डिवेलेपिंग ड्रामा इन इंग्लिश* नाम से शिक्षकों के लिए एक किताब में 'ज्ञान का स्वामित्व' को लेकर यह लिखा है।

'सतही रूप से और गहराई से सीखने के बीच का महत्वपूर्ण अन्तर व्यक्तिगत स्वामित्व के स्तर पर आता है - सामान्य जानकारी का व्यक्तिगत ज्ञान में रूपान्तरण जो गहन और टिकाऊ है क्योंकि यह आन्तरिक प्रेरणा पर आधारित है, अर्थात यह व्यक्तिगत रूप से महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। किसी भी विषय की गहराई में जाने के लिए चिन्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है - यानी वह प्रक्रिया जिसके द्वारा सूचना और अनुभव को समावेशित किया जाता है और ज्ञान उत्पन्न होता है। चूँकि यह प्रक्रिया व्यक्तिगत है, यह व्याख्या करने के लिए आत्मविश्वास पैदा करती है और इसलिए स्वतंत्र रूप से कार्य करने का आत्मविश्वास।'

इससे 'ज्ञान का स्वामित्व' क्या है, ये तो समझ में आता है परन्तु 'ज्ञान के स्वामित्व में नाटक की भूमिका' की इसमें बात नहीं होती है। लेकिन अपनी अब तक की समझ के अनुसार मैं इसे कुछ बिन्दुओं द्वारा समझने-समझाने का प्रयास करता हूँ –

- नाटक की प्रक्रिया के अन्तर्गत वास्तविक जीवन पर आधारित किसी परिस्थिति, मुद्दे या समस्या के आधार पर काल्पनिक दुनिया का निर्माण करना।
- इन परिस्थितियों, मुद्दों, समस्याओं के बारे में बात करना, सोचना एवं महसूस करना।

- कल्पना का सहारा लेते हुए खुद को उस परिस्थिति में डालने एवं उस माहौल को खुद पर ओढ़ने की कोशिश करना।
- नाटक की प्रक्रिया में जाकर उसे पुनः रचना, अनुभव करना तथा जीने की कोशिश करना एवं जीते हुए समझने की कोशिश करना, हल ढूँढ़ना और निर्णय लेना ।
- इस तरह खोजने, जानने और समझने की यात्रा में 'ज्ञान का निर्माण' करना और उस पर स्वामित्व स्थापित करना तथा हाथो-हाथ उसे प्रतिबिम्बित करना।

नाटक प्रक्रिया का उदाहरण

नाटक प्रक्रिया के अन्तर्गत 'ज्ञान के स्वामित्व' को और बेहतर रूप से समझने के लिए किसी कक्षा के उदाहरण के साथ समझना होगा। यह उदाहरण है 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' के एक विभाग 'संस्कार रंग टोली' (Theatre in Education Company) जो मुख्य रूप से बच्चों के साथ और बच्चों के लिए ही कार्य करती है जिसकी शुरुआत बैरी जॉन द्वारा 1989 में की गई थी। संस्कार रंग टोली द्वारा प्रत्येक वर्ष बच्चों के लिए महीने भर की ग्रीष्मकालीन नाट्य कार्यशाला का आयोजन किया जाता है जिसमें बच्चों के साथ कार्य करने के लिए चार विषयों को चार हफ्तों में विभाजित किया जाता है - स्वयं, परिवार, शिक्षा और समाज। प्रस्तुत उदाहरण आठ से दस वर्ष के आयुवर्ग के बच्चों की कक्षा के चौथे हफ्ते के एक दिन का है, जिसमें 'मैं और समाज' विषय पर कार्य चल रहा है।

इस कार्यशाला में चौथे हफ्ते के दौरान, जिस समाज या परिवेश में हम रहते हैं, के प्रति समझ बनाने को लेकर काम चल रहा था। हम जिस समाज में रहते हैं वहाँ हमारे आसपास कौन-कौन और किस तरह के लोग रहते हैं, पर बातचीत चल रही थी जिसमें बातों ही बातों में बात अलग-अलग धर्मों पर होने लगी और चलते-चलते युद्ध पर पहुँच गई। युद्ध पर बात पहुँचते ही हिन्दुस्तान-पाकिस्तान की बात होने लगी जिसमें यह बात साफ तौर पर निकलकर आई कि पाकिस्तान हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है, उसे युद्ध में हराकर खत्म कर देना चाहिए। ये शायद वे बातें थीं जो बच्चों ने अपने आसपास अपने परिवार और समाज में होते हुए सुनी थीं और अपनी उसी समझ को यहाँ रखा था। मैंने जानबूझकर इस बात को बगल में सरकाते हुए बच्चों के समक्ष एक प्रश्न रखा, "युद्ध होना चाहिए या नहीं?"

इस प्रश्न पर ज़्यादातर बच्चों ने युद्ध के पक्ष में अपनी बात रखी। फिर प्रश्न आया कि "क्यों होना चाहिए?" इस प्रश्न पर अधिकतर बच्चों के अनुसार यह एक बहादुरी का काम था, तथा पिस्तौल और बम उनका सबसे बड़ा आकर्षण था। कुछ देश की

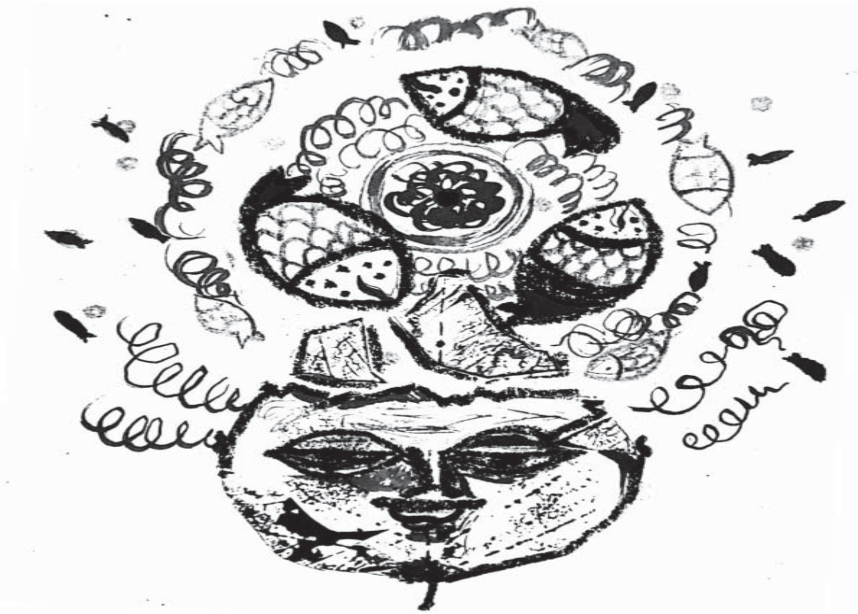

रक्षा के लिए दुश्मनों को मार गिराना चाहते थे, ताकि कोई भी हमारे देश की तरफ देखने की हिम्मत न करे। इसमें खास तौर से फिल्मों का प्रभाव समझा जा सकता था क्योंकि कुछ फिल्मों के उदाहरण भी आए, परन्तु कुछ बच्चे जो पशो-पेश में थे कि युद्ध होना चाहिए या नहीं, उनकी संख्या बहुत कम थी। वे बच्चे लगभग दोनों तरफ ही थे। इस तरह दस बारह मिनट युद्ध होने को लेकर बात होती रही। जो दो-चार बच्चे युद्ध के पक्ष में नहीं थे, उनके पास से कोई खास तर्क निकलकर नहीं आ रहे थे।

अचानक एक बच्चे ने यह बात सबसे अलग, बड़े दमदार तरीके से रखी, “युद्ध नहीं होना चाहिए।” उसने कहा, “इससे फौजियों के अलावा बहुत-से बेकसूर लोग भी बेवजह मारे जाते हैं। लोग बेघर हो जाते हैं। लोगों और देश, दोनों का बहुत नुकसान होता है।” इस तरह की बात निकलकर आने की उम्मीद मुझे तो नहीं ही थी, मगर जैसे ही ये बात निकलकर आई तो कशमकश में फँसे सभी बच्चे इस विचार के साथ हो लिए और दूसरे पाले में युद्ध को बहादुरी का एक रूप मानने वाले बच्चे ज़रा ढीले पड़ गए। इस बात को

उन्होंने भी माना तो मगर देश की रक्षा के लिए इसे ज़रूरी भी माना। अब दोनों तरफ की संख्या लगभग बराबर ही-सी थी। काफी बहस हुई और कुछ स्पष्ट निकलकर नहीं आ रहा था। वैसे भी, युद्ध होना चाहिए या नहीं, यह बातचीत का कोई आसान मुद्दा तो था नहीं, वह भी आठ से दस साल के बच्चों के लिए। बड़े-बड़े इसमें फँस जाते हैं। बच्चे इस पर बात कर रहे हैं, यह क्या कम है।

बच्चों द्वारा विश्लेषण

जब वे काफी देर तक इस गर्मा-गर्म बहस में उलझे तो मैंने बच्चों को दो-चार छोटे समूहों में बाँट दिया और जो समूह युद्ध के नुकसान पर अड़े थे, उनको युद्ध से होने वाले फायदे के बारे में लिखने को कहा और अन्य दो समूहों को युद्ध से होने वाले नुकसान के बारे में लिखने को कहा। इस पर बात करते हुए उन्होंने अपने-अपने समूहों में करीब आधा घण्टा लिया और आधे घण्टे बाद चारों समूह अपने-अपने बिन्दुओं के साथ बड़े समूह में इकट्ठा हुए। सभी ने बड़े समूह में अपने-अपने बिन्दु साझा किए। इन बिन्दुओं में लगभग वही बातें निकलकर आईं जिस पर पहले ही काफी देर तक बहस होती रही थी, मगर एक बिन्दु उसमें से यह निकलकर आया कि युद्ध में चाहे कोई भी हारे या जीते, नुकसान दोनों तरफ ही होता है।

फिर ये बात निकल पड़ी कि हारने वाले का ज़्यादा नुकसान होता है या जीतने वाले का। सम्भावित तौर पर यही बात रही कि हर तरफ से हारने वाले देश का नुकसान ही ज़्यादा होता है। यह बात तो थी देश के स्तर पर मगर अभी तक भी ये दो हिस्सों में ही था कि कुछ का कहना था कि युद्ध होना चाहिए और कुछ का कहना था कि नहीं। फिर मैंने ही एक बात रखी, "चलो, युद्ध में हारने या जीतने पर किसी देश को क्या नुकसान होता है, इसको छोड़ते हैं, और मारे गए दुश्मन सैनिकों तथा देश के सैनिकों, दोनों के घरों में जाते हैं और उनके घरों का हाल देखते हैं।"

इस प्रकार अकेले-अकेले सोचने और उनके घरों के हालात की कल्पना करने के लिए मैंने आठ-दस मिनट उनको छोड़ दिया और साथ में यह बात भी रखी कि "मान लो, हमारे घर का ही कोई सदस्य युद्ध के मैदान में मारा गया हो तो हमें कैसा लगेगा? हमारे घर का माहौल कैसा होगा? शायद किसी के पिता या चाचा या मामा या बड़े भैया या कोई और रिश्तेदार।"

फिर सबको इकट्ठा किया गया और जो दो समूह युद्ध चाहते थे, उनको दुश्मन सैनिकों के घर के हालात पर नाटक के कुछ दृश्य तैयार करने और बाकी दो को अपने देश के सैनिकों के घर के हालात पर नाटक तैयार करने को कहा गया।

इस पर बात करने और छोटा-सा नाटक तैयार करने के लिए बच्चों ने करीब पैंतालिस मिनट लिए और उसके बाद सभी ने एक-एक करके अपनी-अपनी नाटकीय प्रस्तुति दी। थोड़े-बहुत दृश्यों को छोड़कर सभी घरों का माहौल लगभग एक-ही-सा था। मातमी और दुःख भरा। इन नाटकीय प्रस्तुतियों के बाद हमारी कक्षा का माहौल भी कुछ ऐसा ही हो गया था। जब सभी प्रस्तुतियाँ खत्म हो गईं तो बातचीत के लिए सभी गोल दायरे में बैठे और मैंने ही धीरे-से यह बात रखी, "अब आपको क्या लगता है, कैसा महसूस हो रहा है?" थोड़ी देर तक कोई कुछ भी नहीं बोला। कुछ देर के बाद माहौल को हल्का करते हुए मैंने बोला, "आप सभी ने बहुत अच्छी प्रस्तुति की, हम सभी के लिए ताली बजाते हैं।"

अब सभी के चेहरे पर मुस्कान थी और सभी ने ज़ोरदार तालियाँ बजाईं। मैंने फिर पूछा, "अब आपको क्या लगता है कि युद्ध होना चाहिए या नहीं?" सभी का जवाब था कि युद्ध नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे सभी का नुकसान होता है।

तो इस प्रक्रिया में अपने अनुभव और समझ के अनुसार बच्चों ने कक्षा में एक काल्पनिक संसार या परिस्थिति को रचा और उस परिस्थिति में अपनी-अपनी भूमिका लेते हुए, उसको जीते हुए वैचारिक और भावनात्मक रूप से अनुभव किया और इससे उनको इस एहसास को पैदा करने में मदद मिली कि युद्ध में कोई भी हारे या जीते, मगर इन्सान के तौर पर नुकसान दोनों तरफ ही होता है।

फिर बातों ही बातों में यह निकलकर आया कि "हमें लगता तो है कि एक देश दूसरे देश से लड़ रहा है मगर दोनों तरफ असल में इन्सान ही इन्सान को मार रहा होता है। जिस तरह हमारे लिए दूसरा देश दुश्मन होता है वैसे ही वहाँ के लोगों के लिए हम होते हैं। असल में जीत किसी की भी हो मगर किसी भी युद्ध में मरते इन्सान ही हैं।" शायद इस आयु समूह के बच्चों के हिसाब से ये शब्द बहुत बड़े लग रहे हों मगर चूँकि बच्चों ने नाटक की प्रक्रिया में जाकर यह अनुभव किया था या यूँ कहें कि जिया था, इसलिए उस वक्त उनकी ज़ुबान से ये शब्द बिलकुल भी बड़े नहीं लगे थे।

इस तरह इस नाटक की प्रक्रिया में बच्चों ने अपने लिए एक ज्ञान का निर्माण किया कि युद्ध नहीं होना चाहिए, इससे सभी का नुकसान होता है और इस पर स्वामित्व भी हासिल किया क्योंकि यह इनके पास किसी व्यक्ति या किताब के द्वारा एक जानकारी या उपदेश के रूप में नहीं आया था बल्कि उन्होंने स्वयं अपने अनुभव और समझ के अनुसार इसे हासिल किया था। ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि यह बात हमेशा

उनके साथ रहेगी और उम्र के किसी भी पड़ाव में जब भी उनके सामने युद्ध के बारे में बात होगी तो सम्भव है कि वे अपने इस पक्ष को भी रखेंगे या इसके बारे में सोचेंगे, क्योंकि इस एहसास को उन्होंने जानकारी के द्वारा नहीं बल्कि नाट्यकला की प्रक्रिया द्वारा एक अनुभव हासिल करके प्राप्त किया है।

वैसे इस प्रक्रिया में एक बात तो पक्के तौर पर कही जा सकती है कि इस तरह की प्रक्रिया में एक शिक्षक की बहुत बड़ी भूमिका होती है। एक शिक्षक जिस विश्वास के साथ आता है, वही विश्वास बच्चों तक भी स्थानान्तरित होता है। चाहे वह नाटक की प्रक्रिया ही क्यों न हो। इसलिए किसी भी विषय पर एक शिक्षक का नज़रिया बहुत मायने रखता है।

मौअज्ज़म अली: 1993 से थिएटर, ड्रामा और कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। फिलहाल 2012 से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, रुद्रपुर, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड में स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सभी चित्र: शैलेश गुप्ता: आर्किटेक्ट और चित्रकार जो आज भी बचपन को संजोए रखना चाहते हैं। एमआईटीएस, ग्वालियर से आर्किटेक्चर की पढ़ाई। कहानियाँ सुनने और सुनाने का शौक है। भोपाल में रहते हैं।

यह पर्चा अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में 'ड्रामा इन एजुकेशन' की टीम द्वारा इसी विषय पर शिक्षकों और शिक्षक प्रशिक्षकों के लिए एक कोर्स विकसित करने के दौरान लिखा गया था। इस टीम का मानना था कि इस कोर्स को तैयार करने के लिए केवल नाटक और इसकी प्रक्रिया ही नहीं, बल्कि शिक्षा के लक्ष्य एवं परिप्रेक्ष्य, एनसीएफ-2005 एवं कला शिक्षा, सीखने के सिद्धान्तों (Learning Theories) आदि क्षेत्रों एवं विचारों का भी गहन अध्ययन किया जाए और इन पर चर्चाएँ करते हुए, एक टीम के तौर पर समझ विकसित करने का प्रयास किया जाए ताकि शिक्षा से जुड़े सभी पहलुओं को ध्यान में रखते हुए यह कोर्स तैयार हो, जिसकी कक्षाकक्ष में बच्चों के सीखने में एक महत्वपूर्ण और गतिशील माध्यम के रूप में पैरवी की जा सके। इसी प्रक्रिया में मेरे हिस्से 'ज्ञान का स्वामित्व' विषय आया और इस विषय पर समझ बनाने में मेरी मदद कृष्ण कुमार की पुस्तक *शिक्षा और ज्ञान* ने की, साथ ही गूगल की मदद भी ली गई, परन्तु मेरे इस पर्चे का एक प्रमुख आधार लेमोस नोह की किताब *एन इंट्रोडक्शन टू थियरी ऑफ नॉलेज* रही।